आगम–साहित्य का अनुशीलन

(डा. श्री सुव्रतमुनिजी शास्त्री)

आगम शब्द की निष्पत्ति :– आ उपसर्ग पूर्वक 'गम्' धातु से आने के अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर 'आगम' शब्द बनता है।[१] जिसके अनेक अर्थ बनते हैं। जैसा-जैसा प्रसंग होता है वैसा-वैसा अर्थ आगम से ग्रहण कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ लताओं पर नये पत्तों का निकलना भी आगम कहलाता है। जैसे – "लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्य आगमः" कृतः– उत्तर ०५/२०/ ऐसे ही व्याकरण में इडागमः आदि में शब्दरूपों में अक्षरों का आना भी आगम कहलाता है। परंतु प्रस्तुत प्रसंग में आगम का अर्थ है– परम्परागत धार्मिक सिद्धांत ग्रंथ।

पुरातन जैन आचार्यों ने आगम शब्द की अनेक विध व्याख्याएं की हैं। जैसे आगम्यन्ते मर्यादयाऽवबुद्ध्यन्तेऽर्थाः अनेनेत्यागमः।[२] अर्थात् जिससे वस्तु तत्त्व का परिपूर्ण ज्ञान हो, वह आगम है। इसी प्रकार आप्त वचन से उत्पन्न अर्थ (पदार्थ) ज्ञान आगम कहा जाता है।[३] जिससे उचित दिशा व विशेष ज्ञान उपलब्ध होता है, उसे आगम या श्रुतज्ञान कहते हैं।[४]

आगमों के कर्ता:– तीर्थंकर केवल अर्थरूप में उपदेश करते हैं और गणधर उसे ग्रंथबद्ध या सूत्रबद्ध करते हैं।[५] अर्थात्मक ग्रंथ के प्रणेता तीर्थंकर होते हैं। एतद् अर्थ ही आगमों में यत्रतत्र (तस्सण अयमट्ठे पण्णत्ते) ऐसा पाठ प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार जैन आगमों को तीर्थंकर प्रणीत कहा जाता है।[६] यह भी ज्ञातव्य है कि जैन-आगमों की प्रामाणिकता केवल गणधर कृत होने से ही नहीं है अपितु उसके अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर की वीतरागता एवं सर्वार्थ साक्षात्कारित्व के कारण है। जैन अनुश्रुति के अनुसार गणधर के समान ही अन्य प्रत्येक बुद्ध निरूपित आगम भी प्रमाण रूप होते हैं।[७] गणधर केवल द्वादशांगी की ही रचना करते हैं। अंगबाह्य आगमों की रचना स्थविर करते हैं।[८]

आगमों का विभाजन :— आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने आगमों को अंग-प्रविष्ट और अंग बाह्य इन दो भागों में विभक्त किया है।[९] अंग-प्रविष्ट और अंग बाह्य का विश्लेषण करते हुए जिन भद्रगणी क्षमाश्रमण ने तीन हेतु बतलाए हैं। अंग-प्रविष्ट वह श्रुत है—

(१) जो गणधरों के द्वारा सूत्र रूप से बनाया हुआ होता है।

(२) जो गणधरों के द्वारा प्रश्न करने पर तीर्थंकर के द्वारा प्रतिपादित होता है।

(३) जो शाश्वत सत्यों से सम्बन्धित होने के कारण ध्रुव एवं सुदीर्घ कालीन होता है।[१०]

एतदर्थ ही समवायांग[११] में स्पष्ट कहा है – द्वादशांग भूत गणिपिटक भी नहीं था, ऐसा नहीं है, नहीं है, नहीं होगा ऐसा भी नहीं है। वह था, है, और होगा। वह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, और नित्य है।

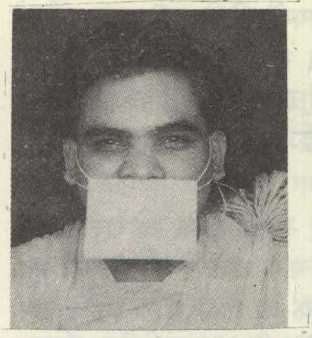

डा. श्री सुव्रतमुनिजी शास्त्री

अंगबाह्य श्रुत : – अंगबाह्य श्रुत वह होता है :–

१ - जो स्थविर कृत होता है।

२ - जो बिना प्रश्न किए तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित होता है।

आचार्य अकलंक ने कहा है कि आरातीय आचार्यों के द्वारा निर्मित आगम अंग प्रतिपादित अर्थ के निकट या अनुकूल होने के कारण अंगबाह्य कहलाते हैं।[१२]

स्थानकवासी परंपरा में ११ अंग, १२ उपांग और ४ मूल तथा १४ छेद अवं १ आवश्यक इस प्रकार कुल ३२ आगमों को प्रामाणिक माना जाता है।

आगम[१३]

अंग–११	उपांग–१२
आचारांग	औपपातिक
सूत्र कृतांग	राजप्रश्नीय
स्थानांग	जीवाभिगम
समवायांग	प्रज्ञापना
भगवती	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति
ज्ञाताधर्मकथांग	चन्द्र-प्रज्ञप्ति
उपासकदशांग	सूर्य-प्रज्ञप्ति
अंतकृतदशांग	कल्पिका
अनुत्तरोपपातिक दशांग	कल्पावतंसिका
प्रश्नव्याकरण	पुष्पिका
	पुष्पचूलिका
विपाकसूत्र	वृष्णिदशा

१. आवश्यक

चार मूल, १ - दशवैकालिक, २ - उत्तराध्ययन, ३ - अनुयोगद्वार, ४ - नन्दीसूत्र। चार छेद १ निशीथ, २ व्यवहार, ३ बृहत्कल्प, ४ दशाश्रुतस्कन्द। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में ४५ आगमों की प्रामाणिकता है। जिनमें पूर्वोक्त ३२ आगमों के अतिरिक्त १० प्रकीर्णक, महानिशीथ, जीतकल्प, और श्रावक आवश्यक। ये कुल मिलाकर ४५ आगम माने जाते हैं। इनके क्रम में विद्वान एक मत नहीं हैं। कुछ विद्वान इनकी संख्या अधिक भी आंकते हैं।[१४]

अंगों में १२ वां अंग दृष्टिवाद को माना जाता है परन्तु वर्तमान में ऐसी धारणा पाई जाती है कि दृष्टिवाद मूलरूप में अनुपलब्ध है।

शिखा चढ़े अभिमान की, करे और उपहास ।
जयन्तसेन रहे सदा, उस जीवन में त्रास ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर मान्यतानुसार भी आगमों का यही वर्गीकरण लगभग माना जाता है। अंगबाह्य इससे भिन्न है।[15] साथ में दिगम्बर मान्यता यह भी है कि कालदोष से ये आगम नष्ट हो गए हैं।[16] दिगम्बरों के अनुसार दृष्टिवाद के ५ भेद माने गए हैं, उनमें परिकर्म के चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति और व्याख्या प्रज्ञप्ति तथा चूलिका के जलगतचूलिका, स्थलगतचूलिका, मायागतचूलिका रूपगत चूलिका और आकाशगतचूलिका नामक हैं।[17]

कुछ लोगों की मान्यता ८४ आगमों को प्रामाणिक मानने की भी है। उनमें ११ अंग, १२ उपांग, ५ मूल, ५ छेद, ३० पइण्णा, पक्खियसुत्त खमणासुत्त, वंदित्तुसुत्त, इसिभासिय, पज्जोसणकप्प, जीयकप्प, जइजीयकप्प, सद्धजीयकप्प १२ निर्युक्ति, विशेसावरस्सयभास।[18]

जैन आगमों का एक वर्गीकरण अनुयोगों के आधार पर भी किया गया है। इसके कर्ता आर्यरक्षित माने जाते हैं जो कि नौ पूर्वों के धारक और दसवें पूर्व के २४ यविक के ज्ञाता थे।[19] इन्होंने सभी आगमों को चार अनुयोगों में विभक्त किया—

१ - चरण-करणानुयोग-महाकल्प, छेदश्रुत आदि।
२ - धर्मकथानुयोग - ज्ञाता धर्म कथांग, उत्तराध्ययन सूत्र आदि।
३ - गणितानुयोग - सूर्यप्रज्ञप्ति आदि।
४ - द्रव्यानुयोग - दृष्टिवाद आदि।[20]

विषय सादृश्य की दृष्टि से प्रस्तुत वर्गीकरण किया गया है। व्याख्या क्रम की दृष्टि से आगमों के दो रूप होते हैं:—

(१) अपृथक्त्वानुयोग
(२) पृथक्त्वानुयोग

सूत्र कृतांग चूर्णि के अभिमतानुसार अपृथक्त्वानुयोग के समय प्रत्येक सूत्र की व्याख्या चरण-करण, धर्म गणित, और द्रव्य आदि अनुयोग की दृष्टि से व सप्त नय की दृष्टि से की जाती थी, परन्तु पृथक्त्वानुयोग के समय चारों अनुयोगों की व्याख्याएं अलग-अलग की जाने लगी।[21]

यह वर्गीकरण होने पर भी यह भेदरेखा नहीं खींची जा सकती कि अन्य आगमों में अन्य वर्णन नहीं है। उत्तराध्ययन में धर्म कथाओं के अतिरिक्त दार्शनिक तत्त्व भी पर्याप्त रूप में है। भगवती आचारांग आदि में भी यही बात है। सारांश यह है कि कुछ आगमों को छोड़कर शेष आगमों में चारों अनुयोगों का संमिश्रण है।

आगमों की वाचनाएं :- महावीर निर्वाण (ई. सन् के पूर्व ५२७) के लगभग १६० वर्ष पश्चात् (ई. सन् के पूर्व ३६७) चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में, मगध देश में भयंकर दुष्काल पड़ने से अनेक जैन मुनि भद्रबाहु के नेतृत्व में समुद्रतट की ओर प्रस्थान कर गए, शेष स्थूलभद्र (महावीर निर्वाण के २१९ वर्ष पश्चात् स्वर्गगमन) के नेतृत्व में वहीं रहे। दुष्काल समाप्ति पर स्थूलभद्र ने श्रमणों का एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें श्रुतज्ञान का ११ अंगों में संकलन किया गया। दृष्टिवाद विस्मृति के कारण संकलित नहीं हो सका। चौदह पूर्वज्ञ केवल भद्रबाहु थे, जो उस समय नेपाल में महाप्राणव्रत साधना कर रहे थे। पूर्वों के ज्ञान हेतु कतिपय साधुओं को उनके पास भेजा, इनमें केवल स्थूलभद्र ही प्राप्त कर सके। उन्हें पाटलीपुत्र के सम्मेलन में संकलित कर लिया गया। इसे पाटलित वाचना के नाम से कहा जाता है।[1]

कुछ समय पश्चात्, महावीर-निर्वाण के लगभग ८२७ या ८४० वर्षबाद (ईसवी सन् ३००-३१३) आगमों को पुनः व्यवस्थित रूप देने के लिए, आर्य स्कंदिल के नेतृत्व में मथुरा में दूसरा सम्मेलन हुआ। दुष्काल के कारण इस समय भी आगमों को क्षति पहुंची। दुष्काल समाप्त होने पर, इस सम्मेलन में जिसे जो कुछ स्मरण था, उसे कालिक श्रुत के रूप में संकलित कर लिया गया। जैन आगमों की यह दूसरी वाचना थी जिसे माथुरी वाचना के नाम से कहा जाता है।[23]

लगभग इसी समय नागार्जुनसूरि के नेतृत्व में बल्लभी (सौराष्ट्र) में एक और सम्मेलन भरा। इसमें जो सूत्र विस्मृत हो गए थे उनका संघटनापूर्वक सिद्धान्तों का उद्धार किया गया।[24]

तत्पश्चात् महावीर निर्वाण के लगभग ९८० या ९९३ वर्षबाद (ई. सन् ४५३-४६६) बल्लभी में देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के नेतृत्व में अन्तिम सम्मेलन हुआ, जिसमें विविध पाठान्तर और वाचना भेद आदिको व्यवस्थित कर, माथुरी वाचना के आधार से आगमों को संकलित करके उन्हें लिपिबद्ध किया गया।[25] दृष्टिवाद फिर भी उपलब्ध न हो सका, अतएव उसे व्युछिन्न घोषित कर दिया गया। श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य वर्तमान आगम इसी अन्तिम संकलना का परिणाम है।

दिगम्बर जैन आगम :- दिगम्बर दृष्टि से द्वादशांग का विच्छेद हो गया केवल दृष्टिवाद का कुछ अंश अवशेष रहा है, जो षट्खण्डागम के रूप में आज भी प्रसिद्ध है। षट्खण्डागम = यह आचार्य भूतबलि व पुष्पदन्त की महत्वपूर्ण रचना है। दिगम्बर विद्वान् इसका रचनाकाल विक्रम प्रथम सदी मानते हैं। यह ग्रन्थ छह खण्डों में विभक्त होने से ही इसका नाम षट्खण्डागम नाम से विख्यात है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर आगम हैं—कषाय पाहुड, तिलोय पण्णत्ती, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, दर्शनप्राभृत, चारित्र-प्राभृत, बोधप्राभृत, भावप्राभृत, मोक्षप्राभृत आदि।

आगमों की भाषा :-

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से भी आगम साहित्य अत्यन्त उपयोगी है। जैन सूत्रों के अनुसार महावीर भगवान ने अर्धमागधी में अपना उपदेश दिया, इस उपदेश के आधार पर उनके गणधरों ने आगमों की रचना की। प्राचीन मान्यतानुसार अर्धगमागधी भाषा को आर्य अनार्य और पशु पक्षियों द्वारा समझी जा सकता थी। आंबाल वृद्ध, स्त्री, अनपढ़ आदि सभी लोगों को यह बोधगम्य थी।[26]

आचार्य हेमचन्द्र ने आगमों की भाषा को आर्षप्राकृत कहकर व्याकरण के नियमों से बाह्य बताया है। त्रिविक्रम ने भी अपने प्राकृत शब्दानुशासन में देश्य भाषाओं की भांति आर्षप्राकृत की स्वतन्त्र उत्पत्ति मानते हुए उसके लिए व्याकरण के नियमों की आवश्यकता नहीं बतायी। तात्पर्य यह है कि आर्ष भाषा का आधार संस्कृत न होने से

अहंकार से बढ़ते तरु, फल आवत झुक जाय ।
जयन्तसेन नम्र बनो, जीवन भर सुख पाय ॥
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह अपने स्वतंत्र नियमों का पालन करती है। इसे प्राचीन प्राकृत कहा है।

साधारणतया मगध के आधे हिस्से में बोली जाने वाली भाषा को अर्धमागधी कहा गया है। अभयदेवसूरि के अनुसार इस भाषा में कुछ लक्षण मागधी के और कुछ प्राकृत के पाए जाते हैं अतएव इसे अर्धमागधी कहा है। मार्कण्डेय ने शौरसेनी के समीप होने के कारण, मागधी को ही अर्धमागधी कहा है। क्रमदीश्वर ने अपने संक्षिप्तसार में इसे महाराष्ट्री और मागधी का मिश्रण बताया है। इनसे यही सिद्ध होता है कि आजकल की हिन्दी भाषा की भांति अर्धमागधी जन-सामान्य की भाषा थी जिसमें महावीर ने सर्वसाधारण को प्रवचन सुनाया था।[२७]

आगमों की टीकाएं

आगम साहित्य पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णीटीका, विवरण-विवृत्ति, वृत्ति दीपिका, अवचूरि, अवचूर्णीव्याख्या, व्याख्यान पञ्जिका, आदि विपुल व्याख्यात्मक साहित्य लिखा गया है। आगमों का विषय अनेक स्थलों पर इतना सूक्ष्म और गंभीर है कि बिना व्याख्याओं के उसे समझना कठिन है। इस व्याख्यापूर्ण साहित्य में 'पूर्वप्रबन्ध' वृद्ध सम्प्रदाय, वृद्ध व्याख्या, केवलिगम्य आदि के उल्लेख व्याख्याकारों ने पूर्व प्रचलित परम्पराओं में प्रतिपादित किया है। निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और कतिपय टीकाएं प्राकृत में लिखी गयी हैं जिससे प्राकृत भाषा और साहित्य के विकास पर प्रकाश पड़ता है। इन चारों व्याख्याओं के साथ मूल आगमों को मिला देने से यह साहित्य पञ्चाङ्गी साहित्य कहा जाता है।

व्याख्यात्मक साहित्य में निर्युक्तियों (निश्चिता उक्तिः निर्युक्तिः)[२८] का स्थान सर्वोपरि है। सूत्र में निश्चय किया हुआ अर्थ जिसमें निबद्ध हो उसे निर्युक्ति कहते हैं। निर्युक्ति आगमों पर आर्या छन्द में प्राकृत गाथाओं में लिखा हुआ संक्षिप्त विवेचन है। आगमों का प्रतिपादन करने के लिए इसमें अनेक कथानक, उदाहरण और दृष्टांतों का उल्लेख किया गया है। इस साहित्य पर टीकाएं भी लिखी गयी हैं। संक्षिप्त और पद्यबद्ध होने के कारण इसे आसानी से कंठस्थ किया जा सकता है। आचारांग, सूत्रकृतांग, सूर्यप्रज्ञप्ति, व्यवहारकल्प, दशाश्रुतस्कन्ध, उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक और ऋषिभाषित इन दस सूत्रों पर निर्युक्तियां लिखी गयी हैं।

इनमें विषयवस्तु की दृष्टि से आवश्यक निर्युक्ति का स्थान विशेष महत्त्व का है। पिंडनिर्युक्ति और ओघनिर्युक्ति मूल सूत्रों में गिनी गयी है। इससे निर्युक्ति साहित्य की प्राचीनता का पता चलता है कि वल्लभी वाचना के समय ई. सन् की पांचवी-छठी शताब्दी के पूर्व ही संभवतः यह साहित्य लिखा जाने लगा था। अन्य स्वतन्त्र निर्युक्तियों में पंचमंगलश्रुत स्कन्धनिर्युक्ति, संसक्तनिर्युक्ति, गोविन्दनिर्युक्ति और आराधनानिर्युक्ति मुख्य हैं। निर्युक्तियों के लेखक परंपरा के अनुसार भद्रबाहु माने जाते हैं, जो छेद-सूत्रों के कर्ता अंतिम श्रुत-केवलि से भिन्न है।

निर्युक्तियों की भांति, भाष्य साहित्य भी आगमों पर लिखा गया है, जो कि प्राकृत गाथाओं, संक्षिप्त शैली और आर्या छन्द में लिखा गया है। कुछ स्थलों पर निर्युक्ति और भाष्य की गाथाएं परस्पर मिश्रित हो गई हैं। इसलिए उनका अलग अध्ययन करना कठिन पड़ता है। निर्युक्तियों की भाषा के समान भाष्यों की भाषा भी मुख्य रूप से प्राचीन प्राकृत अथवा अर्धमागधी है। सामान्यतया भाष्यों का समय ई. सन् की ४-५ वीं शताब्दी माना जाता है। निशीथ, व्यवहार, कल्प, पंचकल्प, जीतकल्प, उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक पिण्डनिर्युक्ति इन सूत्रों पर भाष्य लिखे गए हैं। इनमें निशीथ, व्यवहार और कल्पभाष्य विशेष कर जैनसंघ का प्राचीन इतिहास जानने के लिए अतीव उपयोगी है। इन तीनों भाष्यों के कर्ता संघदास ठाणि क्षमा-श्रमण है जो हरिभद्रसूरि के समकालीन थे। ये वसुदेवहिण्डी के कर्ता संघदास गणिवाचक से भिन्न है।

आगमों पर लिखे गए व्याख्या साहित्य में चूर्णियों का स्थान महत्वपूर्ण है। यह साहित्य गद्यशैली में लिखा गया है। संभवतः जैन तत्त्वज्ञान और उससे सम्बन्ध रखने वाले कथा-साहित्य का विस्तार पूर्वक विवेचन करने के लिए पद्य-साहित्य पर्याप्त न समझा गया। इसके अतिरिक्त यह भी जान पड़ता है कि संस्कृत की प्रतिष्ठा बढ़ जाने से शुद्ध प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत मिश्रित प्राकृत में साहित्य लिखना आवश्यक समझा जाने लगा। इस कारण इस साहित्य की भाषा को मिश्र प्राकृत भाषा कहा जा सकता है। आचारांग, सूत्रकृतांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति-कल्प, व्यवहार, निशीथ, पंचकल्प, दशाश्रुत स्कन्ध, जीतकल्प, जीवाभिगम, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, उत्तराध्ययन, आवश्यक दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोगद्वार इन सोलह आगमों पर चूर्णियां लिखी गयी हैं। इनमें पुरातत्त्व के अध्ययन की दृष्टि से निशीथ चूर्णी और आवश्यक चूर्णी का विशेष महत्त्व है। इस साहित्य में तत्कालीन रीति रिवाज, देश, काल, सामाजिक, व्यवस्था, व्यापार आदि का रोचक वर्णन मिलता है। वाणिज्य कुलीन कोटिकगणीय वज्रशाखीय जिनदास-गणि-महत्तर अधिकांश चूर्णियों के कर्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका समय ई. सन् की छठी शताब्दी माना जाता है।

आगमों पर अन्य अनेक विस्तृत टीकाएं और व्याख्याएं भी लिखी गयी हैं। अधिकांश टीकाएं संस्कृत में हैं, यद्यपि कतिपय टीकाओं का कथा सम्बन्धी अंश प्राकृत में उद्धृत किया गया है। आगमों के प्रमुख टीकाकारों में याकिनीसूनु, हरिभद्रसूरि और मलयगिरि आदि आचार्यों के नाम उल्लेखनीय हैं। टीकाओं में आवश्यक टीका और उत्तराध्ययन की पाइय (प्राकृत) टीका आदि मुख्य है।

इसके अतिरिक्त वर्तमान शताब्दी में हिन्दी भाषा में भी अनेक विद्वान् आचार्यों ने अच्छा व्याख्यात्मक साहित्य लिखा है।

---

१ संस्कृत हिन्दी कोश, ले. वामन शिवराम आपटे, पृ. १३९-४०

२ रत्नाकरावतारिकावृत्ति

३ आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः । उपचारादाप्तवचनंद-च।
स्याद्वादमंजरी श्लो-३८ टीका

४ सासिज्जइ जेण तयं सत्थं तं वा विसेसियं नाणं।
आगम एव य सत्थं तु सुयनाणं । विशेषावश्यकभाष्य गा. ५५९

५ अंत्थं भासइ अरहा, सुत्रं गन्थन्ति गणहरानिउणं/सासणस्स हि

न्यायनीति रख नम्रता, छोड़ सकल अभिमान ।
जयन्तसेन अवश्य हो, जीवन का उत्थान ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यट्ठाएतओसुत्तं पवत्तइ ॥ आव. नि. गा. १९२

६ नंदीसूत्र गा. ४०

७ सुत्रं गणहरकथिदं तहेव पत्रेय बुद्धकथिदं च।
सुदकेवलिणा कथिदं अभिण्ण दस पुव्वकथिदंच ॥ मूलाचार गा. ५-८०
तथा जयधवला, पृ. १५३

८ विशेषावश्यक भाष्य गा. ५५०
वृहत कल्प भाष्य गा. १४४

९ अहवा तं समासओ दविहं पण्णतं, तं जहा-अंग पविट्ठं अंगबाहिरं च
नंदी सूत्र ४३

१० गणहर थेरकयं ना आएसा मुक्क वागरणओ वा।
धुव चल विशेषओ वा अंगाणंगेसु नाणत्तं॥ विशेषावश्य. भा. गा. ५५२

११ दुवालसंगे णं गणिपिडगे ण कयावि णत्थि, ण कयाइ णासी,
ण कयाइ, ण भविस्सइ
भुविं च भवति य भविस्सति य, अयले, धुवे, णितिए,
सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, णिच्चे ।
समवायांग, समवाय १४८।

१२ आरातीयाचार्य कृतांगार्थ प्रत्यासन्नरूपमंगबाह्यम् ।
अकलंक, तत्त्वार्थराजवार्त्तिक, १/२०

१३ दे. जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग २, पृ. ६८८
तथा विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए, नंदीसूत्र

१४ जैन आगम साहित्य, पृ. १४, लेखक, देवेन्द्रमुनि शास्त्री,

१५ वही, पृ. १५, तथा मिलाइए, जैन आगम साहित्य में भा. पृ. २८

१६ डा. जगदीश जैन, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. २८

१७ वही, पृ. २८ का फुटनोट

१८ वही, पृ. २८ तथा विस्तार के लिए दे. जैन आगम साहित्य, पृ. ३१-३२.

१९ प्रभावक चरित्र आर्यरक्षित, श्लोक ८२-८४

२० (क) आवश्यकनिर्युक्ति गा. ३६३-३७७
(ख) विशेषावश्यक भाष्य २२८४-२२९५
(ग) दशवैकालिक निर्युक्ति, ३ टी.

२१ जत्थ एते चात्तारि अणुओगा विहप्पिहिं, वक्खाणिज्जंति पुहुत्ताणुयोगे
अपुहुत्ताणुजोगो, पुण जं रएक्केक्कं सुत्तं एतेहिं चउहिं वि अणुयोगेहिं
सत्ताहिं णयसत्तेहिं वक्खाणिज्जाति ।
सूत्रकृत चूर्णि पत्र ४।१.१२०४

२२ आवश्यक चूर्णि २, पृ. १८७

२३ नन्दी चूर्णी, पृ. ८ ।

३४ कहावली, २९८, मुति कल्याण विजय वीर निर्वाण और,
जैन काल गणना, पृ. १२, आदि से।

२५ संभवत: इस समय आगम साहित्य को पुस्तक बद्ध करने के सम्बन्ध में ही विचार किया गया। परंतु हेमचंद्र ने योगशास्त्र में लिखा है कि नागार्जुन और स्कंदिल आदि आचार्यों ने आगमों को पुस्तक रूप में निबद्ध किया। फिर भी साधारणतया देवर्धिगणि ही 'पुत्थे आगमलिहिओ' के रूप में प्रसिद्ध हैं। मुनि पुण्यविजय, भारतीय जैन श्रमण, पृ. १७।

२६ जैसे पात्र, विशेष के आधार से वर्षा के जल में परिवर्तन हो जाता है वैसे ही जिन भगवान की भाषा भी पात्रों के अनुरूप हो जाती है।
बृहत्कल्प भाष्य

२७ जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज,
पृ. ३३, ले. डॉ. जगदीशचंद्र जैन

२८ आवश्यक चूर्णी पृ. ४९१।

मधुकर मौक्तिक

जो आत्मा की साधना करते हैं, उन्हें संसार से कोई मतलब नहीं होता। उन्हें तो आत्मा को साधना है। जगत् के क्रिया-कलापों से उन्हें कोई मतलब नहीं होता। जगत् के समस्त पदार्थ अ-शाश्वत हैं। वे बनते और बिगड़ते हैं; इसलिए हमें ऐसे जीवन का निर्माण करना चाहिये जो बनने के बाद फिर कभी बिगड़े नहीं। साधक यदि विनश्वर पदार्थों में उलझ जाएगा तो उसकी सारी साधना निरर्थक हो जाएगी। विनश्वर पदार्थों में उलझने से बचाते हैं—साधु-मुनिराज। हमें उनका बार-बार अवलम्बन लेना चाहिये और अपनी आराधना को आगे बढ़ाते रहना चाहिये। वे स्वयं साधना के मार्ग पर चलते हैं और आराधक आत्माओं को साधना के मार्ग पर चलाते हैं।

भाव आत्म परिणामों में निर्मलता लाता है, जबकि भव मलिनता बढ़ाता है। भाव से निर्वेद, निर्लेप और निराग स्थिति प्राप्त होती है, जबकि भव ठीक इसके विपरीत स्थिति में रखता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र के स्वामी आत्मा को स्व—पर कल्याणकारी पावन पथ पर अग्रसर होने के लिए और अनुशासन बद्ध रहकर भावसंशुद्धि/विशुद्धि का मार्गक्रमण करने के लिए जैनशासन प्रबल प्रेरणा देता है। जैनशासन की यह प्रेरणा आत्मा में नयी चेतना जगाती है। यह चेतना उसे अशुभ से शुभ, शुभ से शुद्ध और शुद्ध से विशुद्ध की ओर ले जाती है। अशुभ और शुभ की परिभाषा सरल और सीधी है। दानवी कुविचार वाणी और व्यवहार जीव को अशुभ की ओर घसीट ले जाते हैं अर्थात् ये मलिनता को बढ़ावा देते हैं। परिणाम यह होता है कि इनके कारण मनुष्य पथभ्रष्ट हो कर हैवान/शैतान बन जाता है। उसकी मनुष्यता खत्म हो जाती है।

— जैनाचार्य श्रीमद् जयंतसेनसूरि 'मधुकर'

क्रोध हनन करता सदा, विजय कीर्ति सन्मान ।
जयन्तसेन इसे तजो, हित अहित पहचान ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org